

एक विराट व्यक्तित्व की तलाश—शब्द पुरुष—अज्ञेय

डॉ. मारुण्ड सिंह,

हिन्दी विभाग,

इलाहाबाद डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद,

संघटक—पी.जी. कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री नरेश मेहता द्वारा रचित “शब्द—पुरुष—अज्ञेय” सचिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन “अज्ञेय” के लेखन एवं व्यक्तित्व का आकलन नहीं अपितु स्मरण है और वह भी संस्मरणात्मक आत्मीय भूमि पर से ही किया गया है। साथ ही एक अग्रज समकालीन को जिस सभ्यता से देखा जाना चाहिए, उसकी चेष्टा की है। इसमें “शब्द—पुरुष—अज्ञेय” वात्स्यायन जी के लिए एक ऐसा विशेषण है, जो अपनी अर्थवत्ता एवं सारगर्भिता के साथ-साथ नए प्रतिमानत्व का भी पूर्ण व्यंजक है। यह तो सत्य ही है कि अज्ञेय जी शब्द मर्मज्ञ एवं शब्द सम्राट थे किन्तु साथ ही लेखक ने परम्परायुक्त या साहित्य प्रयुक्तमुक्त शब्द का प्रयोग न करके नए विशेषण का साभिप्राय प्रयोग किया है। प्रयोगवादी कवियों की दृष्टि में परम्परा प्रयुक्त शब्द “घिस” गये हैं। उनका मुलम्पा छूट गया है। वे निर्बल एवं अशक्त से हो गये हैं। यह प्रयोग धर्मी मानसिकता भी “शब्द—पुरुष” के प्रयोग में प्रतिबिम्बित होती है। इस आलेख के पूर्व भी नरेश जी ने अपने एक और आत्मीय मुक्तिबोध का स्मरण किया है। निश्चित ही ये दोनों स्मरण आलेख हिन्दी साहित्य में सर्वथा एक नये प्रकार की शैली और आस्वाद को जन्म देते हैं।

किसी लेखक की रचना को पढ़ना और उस लेखक को अपने सामने पाना, उसे देखना और उसके साथ होना, अवसर मिले तो उस लेखक के सोच और रचना पर एक ईमानदार और जिज्ञासु संवाद करना एक भिन्न और

रोमांचक अनुभव होता है। कई भ्रम दूर होते हैं। वास्तविकताओं को जानना कभी अच्छा भी होता है और कई बार बुरा भी। एक व्यक्ति और लेखक के बीच के द्वन्द्व, उसके अन्तर्विरोध कर्म और शब्द के बीच की फांक को जानने और देखने का कोई अन्य तरीका है भी नहीं। श्री नरेश मेहता जी ने “शब्द—पुरुष अज्ञेय” की भूमिका में लिखा हैकू

“वात्स्यायन जी के स्मरण शब्द से ही मन में न जाने कितनी गूँजें, प्रतिगूँज बनकर आप्लावित किये हैं। सच तो यह है कि आत्मीयता एक ऐसा वलय है जो अन्तर वलय घेरे-कसे रहती है। छवियाँ और शब्द बनकर जहां वह उपस्थित रहती है वहां वह वाह्य जीवन प्रसंगों की माधवी बन अहोरात्र पुकारती होती है। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि वे वर्ष ही शायद सुखद थे, जब हम प्रति-उपेक्षा के विन्ध्याचल के विपरीत छोरों पर वर्षों असंग खड़े थे, तब न राग था न आत्मीय सम्बन्ध परन्तु जीवन के अन्तिम दशक में जैसी निकटता हुई। उसे हठात् खो देना कितना त्रासद है कि आज साहित्य और जीवन का सारा स्वाद ही तुरा गया है। कितने कम लोग होते हैं जिनका बीतना अपने बीतने जैसा लगता है। वात्स्यायन जी की निकटता आत्मीय बनकर ऐसी गहराएंगी यदि यह जानना होता तो उपेक्षा के विन्ध्या लांगता ही क्यों? वस्तुतः वात्स्यायन मेरे लिए एक साहित्यिक व्यक्तित्व या औपचारिक नाम ही नहीं है बल्कि एक संपूर्ण सर्जनात्मक अनुभव जैसा है।”

अज्ञेय जी के निकट होना या हो पाना सरल नहीं है क्योंकि उनके निकट होना आपके चाहने पर ही निर्भर नहीं करता है। यह तो केवल अज्ञेय जी पर निर्भर करता है कि वह आपको अपने निकट जाने देना चाहते हैं या नहीं। व्यक्ति के चुनाव में उनके मानदण्ड कठोर होते हैं। साथ ही मानदण्ड की प्रक्रिया भी जटिल एवं दीर्घ होती है। आधारभूत रूप से वह चाहते और परखते भी हैं कि मनुष्य, मनुष्य की तरह और एक सर्जक-सर्जक का सृजनशील होना ही पर्याप्त नहीं है, उसे अपने आचरण और भंगिमा से भी सर्जक ही लगना चाहिए। यह कतई आवश्यक नहीं कि एक रचनाकार होने के कारण उनकी पसन्द केवक सृजनशील व्यक्ति ही हो। वह किसी सामान्य व्यक्ति के प्रति भी आत्मीय हो सकते हैं। अज्ञेय वात्स्यायन से नरेश जी की पहली मुलाकात सन् १९४७ में प्रयाग में "प्रगतिशील-लेखक-संघ" के दूसरे अधिवेशन में हुई। नरेश जी ने वात्स्यायन से प्रथम परिचय में ही उनके साथ काफी हाउस तक की यात्रा, काफी हाउस में साथ-साथ बड़ी देर तक बैठे रहना, कुछ जानना और थोड़ा बहुत अपनी ओर से कहना। उन्हीं के शब्दों में देखेंकृवात्स्यायन के दर्प, अहंकार या "अशोभनीय मौन" को लेकर लेखकों को प्रायः शिकायत रही है उसमें वात्स्यायन का अपना स्वभाव, परिस्थितियां आदि निश्चित ही कुछ तो कारण रही ही है, परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि इसमें स्वयं हिन्दी लेखकों का भी कम दोष नहीं था। सन् ४० से ५० का दशक ऐसा था जब वात्स्यायन एक प्रकार की मानसिक हताशा के कालखण्ड से गुजर रहे थे। अभी उनके पास गर्व या अहंकार करने के लिए उपलब्धि की कोई खास पूंजी भी नहीं थी। यदि उनके साथ तत्कालीन मित्रों, लेखकों ने समवयस्की पन का भाव और आचरण किया होता तो काफी कुछ वात्स्यायन सहज हो सकते थे।^{६६} वस्तुतः गत चालीस-पचास वर्षों में साहित्य की गाड़ी उनके कारण उलार ही ज्यादा रही, पर

इसमें केवल वात्स्यायन ही कारण नहीं हैं। जैसा कि, मैंने पहले कहा कि वह कुछ विशिष्ट है और इसे अस्वाभाविक भी नहीं कहा जा सकता था, क्योंकि वैशिष्ट्य था तो कृपर व्यक्ति उसका उचित समादर हो जाता तो अच्छा ही थाकृस्वयं वात्स्यायन के लिए भी और साहित्य के लिए भी।

नरेश जी का मानना है कि वात्स्यायन को सहज हमने नहीं होने दिया। जीवन के उत्तरकाल में जब वह सहज होना भी चाहते रहे लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। वात्स्यायन से नरेश जी का प्रथम परिचय भी आत्मीय शहर इलाहाबाद में ही हुआ था। नरेश जी को अपनी जन्मस्थली मालवा (मध्य प्रदेश) सदृश ही कर्मस्थली इलाहाबाद से भी न केवल साहित्यिक स्तर पर ही बल्कि संवेदनात्मक स्तर पर भी बेहद लगाव है। वात्स्यायन का भी इस शहर से खासा लगाव था, उनके भीतर भी इस बीतते शहर के टूटे पन की कराह सुनी जा सकती थी, पर मौन। नरेश जी शब्द पुरुष अज्ञेय "पुस्तक में वात्स्यायन के साथ-साथ अपने शहर इलाहाबाद का स्मरण करते हुए लिखा हैकृ"आज जब मैं घर के नाम पर कल के इस "साहित्यिक मक्का" इलाहाबाद जाता हूं और हर दूसरे तीसरे महीने जाता ही हूं तो शंकरगढ़ के आगे विन्ध्या के अंतिम पथरीलेपन को उतरकर जैसे ही यमुना ब्रिज आता है, और क्षितिज में मकानों की एक लकीर सी िखर्ची दिखने लगती है जो किले पर जाकर गाठ बन जाती है तो लगता है जैसे आपके भीतर दिल से कांच पर किसी ने हीरे लगी कलम से एक रेखा खींच दी और आपका एक हिस्सा निःशब्द हमेशा-हमेशा के लिए अलग हो गया। घर लौटने का सारा उत्साह, सुख जैसे एक विषाद में परिवर्तित हो जाता है।^{६६} सच तो यह है कि उस इलाहाबाद का उजड़ना, साहित्य का, साहित्य की केन्द्रीयता का उजड़ता था जिसका कि स्थान कालान्तर में न तो दिल्ली ही ले सकी

और न आँख खोलता आपका यह रम्य शहर भोपाल।”

इलाहाबाद शहर वैसे तो सदा से ही राजनीति की धुरी रहा है कृपंडित जवाहर लाल नेहरू, डॉ. राम मनोहर लोहिया प्रभृति राजनेता उपस्थिति दर्ज करवाते रहे है। पर शहर की आत्मा तो महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी “निराला”, पंत, महीयसी महादेवी वर्मा से लेकर आधुनिक साहित्य के पुरोधा श्री नरेश मेहता, डॉ. लक्ष्मीकान्त वर्मा, डॉ. रघुवंश, डॉ. जगदीश गुप्त, डॉ. राम स्वरूप चतुर्वेदी, श्री केशव चन्द्र वर्मा, डॉ. राम कमल राय, डॉ. सत्य प्रकाश मिश्र, श्री दूधनाथ, श्री मार्वहण्डेय, शेखर जोशी, अमर कान्त एवं शैलेश मटियानी आदि साहित्यकारों (जिसमें अधिकांश आज नहीं हैं) की कार्यस्थली उपस्थिति आज भी इस साहित्यिक तीर्थ को उजड़ने नहीं देगा।

आज का इलाहाबाद कल का बीता हुआ इलाहाबाद है। मुझे ऐसा नहीं लगता कृहां इतना कहा जा सकता है कि पिछले वर्षों में इस शहर का क्रमशः उतरना त्रासद है। पिछले कई वर्षों पूर्व में “हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद द्वारा आयोजित व्याख्यानमाला शृंखला “अज्ञेय स्मृति व्याख्यानमाला”, महीयसी महादेवी व्याख्यानमाला, “कथाकार प्रेमचन्द स्मृति व्याख्यानमाला, भाषा एवं राष्ट्रीय कविता व्याख्यान, शृंखला आदि के माध्यम से साहित्यिक हस्तियों के जमावड़ों से शहर में पुनः जीवन्तता का संचरण हुआ है। “अज्ञेय स्मृति व्याख्यानमाला” “शृंखला जिसमें नरेश जी भी थे हिन्दी संस्थान एवं साहित्य अकादमी लखनऊ के अध्यक्ष लक्ष्मीकान्त वर्मा ने कहा था कि “मुझे साहित्यिक गोष्ठियों में जो गर्म जोशी इलाहाबाद में दिखाई देती है वह लखनऊ में नहीं। इसके लिए वर्मा जी ने एकेडेमी के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ० राम कमल राय जी को बधाई भी दी थी जो वास्तव में कोटिशः बधाई के पात्र भी थे जिनके अथक प्रयासों ने शहर के साहित्यिकारों में

सक्रियता के स्पष्ट चिन्ह परिलक्षित होने लगे थे। प्रमोद त्रिवेदी जी अपनी पुस्तक “नरेश मेहता एक एकान्त शिखर” में नरेश जी के व्यक्तित्व के विषय में लिखते हैं कृ“इलाहाबाद धार्मिक तीर्थ ही नहीं, कभी साहित्य का तीर्थ भी रहा है। “ “ “ “ चाहे उस दिन नरेश जी के व्यक्तित्व पर ध्यान न दिया गया हो पर इतना तो निश्चित उसी सत्र में कर लिया था कि भोपाल में आयोजित इस “साहित्यिक-सांस्कृतिक कुम्भ” इलाहाबाद से आये इस “महन्त” से अवश्य मिलना ही है जिसका अपना न तो कोई मठ है न ही जमात। वह स्वयं अपनी ध्वजा भी है और ध्वजावाहक भी। मठाधीश चाहे वह न हो पर वह सामान्य भीड़ भी नहीं है। उसे महत्त्व न दिया जा रहा हो पर उसकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती है। वह सब से अलग उसे एकाकी होने का न तो भय है और न ही चिन्ता कृजैसे कोई एकान्त शिखर।”

भारतीय साहित्य में नरेश जी भारतीय संस्कृति के उन्नायक के रूप में स्मरणीय रहेंगे, जीवन में भी उनकी रुझान उन मूल्यों के प्रति उतनी ही गहरी है। हमारे देश में तप एक बहुत बड़ा मूल्य रहा है। नरेश जी ने भी अपने जीवन में तपश्चर्या का पूरा महत्त्व दिया है कृआभ्यनितक मूल्य साधना के स्तर पर भी और कर्मकाण्डीय स्तर पर भी। भारतीय संस्कृति के विकास क्रम में जो अनेक विकृतियां आती गयी हैं। नरेश जी उनको लेकर बहुत ही चिन्ताशील रहे हैं। वैदिक संस्कृति को पौराणिकता ने जिस प्रकार संशोधित-परिवर्धित किया है उस पर भी उनकी पूरी सहमति नहीं है। उनकी दृष्टि में जहां पुराणों ने राम और कृष्ण के मनुष्य रूप को एक ईश्वरत्व प्रदाप करके एक नयी भागवत-भक्ति की परम्परा का शुभारम्भ किया वही उन्हीं पुराणों ने वेद के सर्वमान्य एवं सर्व प्रमुख देवता इन्द्र के चरित्र को अधःपतित करने की दुर-सन्धि की। इन्द्र के साथ किया गया यह अति चार संस्कृति के वैदिक प्रवाह को कई अर्थों में क्षरित करता है। नरेश जी ने लिखा है कृ“वेद में जो विष्णु गौण देवता है

उनकी वैदिक वामनता को पुराणि को ने विराटता में परिणत कर दिया। विष्णु को ऐसी प्रमुखता मिलने में निश्चय ही इन्द्र वाधक हो सकते थे अतः जिस रूप में, जिस भाषा में और जिस कृ तधनता के साथ इन्द्र को विष्णु के महाभिषेक में बलि पशु बनाया गया वह नितान्त जघन्य कृत था।”

इस प्रकार हम देखते हैं कि नरेश मेहता की दृष्टि अपने प्राचीन ग्रंथों तथा उनके प्रतिपाद्य को ज्यों ना त्यों अन्ध स्वीकृति प्रदान करने वाली नहीं है वे मूल्यान्वेषण की कोशिश में समस्त सांस्कृतिक चेतना के विकास को उनके अन्धविरोधों के साथ देखते हैं तथा उनके स्वस्थ पक्ष को ही स्वीकार करते हैं।

गंगा के द्रौपदी घाट पर नरेश जी वात्स्यायन के साथ बैठे थेकृ”मै। गंगा की इस विपुल प्रशान्तता में कहीं अपने से दूर चला गया था कि मुझे सुनायी दिया जैसे वात्स्यायन कुछ कह रहे हैंकृ”आपकी कविताओं से तो लगता है कि आप अच्छी खासी वैदिक परम्परा से आते हैं। मैं हठात् नहीं समझ सका कि वह क्या जानना चाहते हैं। मैंने भी शायद कुद ऐसा ही कहा था कि “दैनिक सामान्य पूजा-पाठ तो परिवार में आज भी है पर हां, पितामह को अवश्य विशिष्ट पूजा-पाठ आदि करते देता था।”

वात्स्यायन मेहता जी के उपन्यास की भूमिका लिखना चाहते थे, लेकिन नरेश जी भी वात्स्यायन की तरह ही अपने स्वत्व एवं संकल्प को निष्ठा एवं आग्रह के साथ घर रहते हैं। इस बीच कुछ अवांछित घटित हो गया। नरेश जी अपने उपन्यास की पाण्डुलिपि लेने दिल्ली वात्स्यायन जी के घर पहुँचे वात्स्यायन तेजी से बाहर निकले और आते ही उन्होंने पूछा कि “कहिए”?कृजो मुझे अप्रिय लगा “खैर कुल यही कहा “वो मेरा उपन्यास”कृआप एक मिनट रुकें “कहते हुए भीत चले गये और सचमुच एक ही मिनट में पाण्डुलिपि लाकर देते हुए बोले

“अच्छा”। “उनके इस आचरण को मैं नहीं समझ पा रहा था कि इसे शिष्टता की किस कोटि में रक्खा जाय और मुझे लगा कि मेरा वात्स्यायन से यह अन्तिम मिलना है। स्वत्व की अवमानना के मूल्य पर जब न जाने क्या-क्या घर, परिवार, नौकरी-चाकरी छोड़ता आया तब भलाकृऔर दुबारा जिसे मिलन कहा जाता है उसके लिए दोनों को ही लगभग पच्चीस वर्षों से भी अधिक की प्रतीक्षा करनी पड़ी।”

प्रकृति की मनुष्य से दुहरी अपेक्षाएँ हैंकृजैविक भी और सृजनात्मक भी। जैविक दृष्टि से तो यह सृष्टि तथा अन्य सारे प्राणी प्रकृति की इस अपेक्षा को बहुत कुछ अंशों और रूपों में पूरा करते हैं परन्तु जिस-सृजनात्मकता की उसे अपेक्षा है, जो कि कहीं अधिक मूल्यवान है वह तो केवल मनुष्य द्वारा ही संभव है। “जिस सृजनात्मकता में यह निर्वैयक्तिकता या असम्भूतता जितनी ही प्रभूत और संकल्पात्मक होगी वह उतनी ही देश कालातीत होगी। सृजनात्मकता के बारे में इसे क्लासिकी दृष्टि कहा जायेगा। टी.एस. इलियट ने भी इसी बात को अपने तरीके से स्वीकारा है तथा वात्स्यायन भी वैचारिकता के स्तर पर वही मानते रहे। वात्स्यायन ने अपनी प्रकृतिग्राही मानसिकता का एक भिन्न धरातल प्रस्तुत किया हैकृप्रकृति अपने प्रकृत रूप में उपस्थित है और मानव-अनुभूति को, उसकी संरचना को उसके पूरे व्यक्तित्व को अपनी उदात्ता से परिपूर्ण करती है। यही दृष्टि अज्ञेय की अधिकांश कविताओं में है। वन्दनीय गुरुवर डॉ. राम कमल राय के शब्दोंकृ

“नरेश मेहता की काव्य दृष्टि प्रकृत के इस उदात्त रूप को और भी विशद एवं विभ्रान्त भाव से ग्रहण करती है। प्रकृति उनकी समूची संस्कृति मे इस प्रकार केन्द्रीय सत्ता बनकर उसे नयी क्रान्ति और नया संस्कार प्रदान करती है, जिसे देखकर आश्चर्य होता है। नरेश मेहता प्रकृ ति से इस प्रकार साक्षात्कार करते हैं कि उसी

साक्षात्कार के परिणामस्वरूप उनका मन सहज मानवीय विकारों से अपने को मुक्त करता हुआ लगता है। उनके व्यक्तित्व के उदारीकरण में सब से बड़ा योग प्रकृति के प्रति उनकी नव्य दृष्टि का ही है।”

अतः हम कह सकते हैं कि प्रकृति को अपनी पूरी सांस्कृतिक अनुभूति का अविभाज्य अंग बनाकर ग्रहण करना और उसे उसी में अभिव्यक्ति देना नरेश जी की प्रकृति दृष्टि की सब से केन्द्रीय प्रवृत्ति है इसमें भले ही कहीं-कहीं प्रकृति के साथ बलात तादात्म्य करने का भाव दिखे, परन्तु मूलतः यह दृष्टि एक आर्ष व्यक्तित्व की महत्त्वपूर्ण रचनात्मक परिणति कर साक्ष्य प्रस्तुत करती है। प्रकृति के भरोखे से संस्कृति की पहचान और शोध की जो प्रक्रिया नरेश जी के कवि व्यक्तित्व में आज से तीस वर्ष पहले प्रारम्भ हुई थी समस्त आर्ष साहित्य के मंथन और चिन्तन के बीच से गुजरती हुई आज अपनी उत्सवा भूमि पर प्रतिष्ठित है। आज भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम गायकों में नरेश जी का नाम लिया जा सकता है।

कवि कर्म की सब से बड़ी कसौटी भाषा है। किस बिन्दु पर अभिव्यक्ति कविता बन जाती है और कहां वह केवल एक कथन मात्र बनकर रह जाती है इसका निर्णायक तत्त्व भाषा ही है। नरेश जी “शब्द-पुरुष”, “अज्ञेय में शब्द” की सत्ता को स्वीकारते हुए लिखते हैंकृ“यदि कोई सत्ता है तो वह मात्र शब्द की जिसे वह प्रयुक्त कर रहा है। शब्द से इतर-बल जैसी सत्ता पाखण्ड है, अवैज्ञानिक है। शब्द से इतर जब कविता ही नहीं संभव है तब अन्य किसी सत्ता की कल्पना निरी वंचना हैकृऔर नन्दादेवी और कवि के बीच मेघ-कपाट बन्द हो जाते हैं, पटाक्षेप हो जाता है।”

लेखक का उद्धरण उसके “शब्द पुरुष अज्ञेय” के नामकरण सम्बन्धी दृष्टिकोण को काफी दूर तक स्पष्ट करता है। इसी सन्दर्भ में

हम शब्द पुरुष के शब्दों में देखेंकृ“आज भी मेरे सामने जो समस्या है और जिसका हल पा लेना मैं अपने कवि जीवन की चरम उपलब्धि मानूंगा, वह अर्थवान शब्द की समस्या है। काव्य सब से पहले शब्द हैकृऔर सब से अन्त में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है। सारे कवि धर्म इसी परिभाषा से निःसृत होते हैं। शब्द का ज्ञान-शब्द की अर्थवत्ता की सही पकड़ ही कृ तिकार को कृति बनाती है।” “ “ “ जो कवि शब्द के संस्कार के प्रति सजग नहीं है। (और जैसे जीव हर कर्म उसके संस्कार को बदलता है वैसे ही शब्द का प्रत्येक उपयोग उसे नया संस्कार देता है) वह अर्थवान शब्द का साधन नहीं है और मैं कहूंगा कि वह कवि नहीं है, न होगा।”

नरेश जी की भाषा का स्वरूप बहुत दूर तक इस देश की आर्ष-चिन्तन परम्परा से निर्मित हुआ प्रतीत होता है। उनकी शब्दावली आर्ष-चिन्तन की शब्दावली है।

प्रस्तुत स्मरणात्मक पुस्तक में नरेश जी ने जिस पुरुष को स्मरण किया है उससे एक लम्बे अर्से लगभग २५ वर्षों के अबोलेपन के बाद दूबारा मिलने का श्रेय नरेश जी ने जिन व्यक्तियों को दिया है उनमें मुख्य भूमिका उनकी स्वयं की पत्नी महिमा जी को एवं डॉ. राम कमल राय जी को जाता है। “शब्द पुरुष अज्ञेय” में नरेश जी लिखते हैंकृ“पत्नी महिमा जी ने अपने “कान्ता सम्पत्ति ढंग से मुझे समझाया कि अज्ञेय जी के इस आग्रह की रक्षा करनी ही चाहिए क्योंकि जब मेरे मन में उनको लेकर हमेशा आदर और आत्मीयता ही रही है तब व्यर्थ की बातों से जो वर्षों का तनाव है वह आखिर दूर किस प्रकार होगा।” “ “ “

डॉ. राम कमल राय जी ने वात्स्यायन पर एक आलोचना ग्रन्थ लिखा था, जो मुझे अच्छा लगा था। उनसे प्रायः वात्स्यायन पर भी चर्चा होती रहती है। शायद है उन्होंने ही “लिएसा” का

काम किया हो और बाद में इस अनुमान की पुष्टि भी हुई।”

वात्स्यायन के आत्मीय होने पर नरेश जी इतने उल्लसित हो उठे जैसे उन्हें अपनी खोई हुई निधि मिल गयी हो। नरेश जी वास्तव में अज्ञेय के साहित्यिक कृतित्व और व्यक्तित्व को सम्मान देते रहे हैं। अपने अन्तर में उन्हें अर्से से वे उसी सम्मान की पीठिका पर रक्खे रहे थे तभी तो हठात् जब आवरण हटा तो भीतर की स्नेह धारा पूरी वेगवता से फूट पड़ी। स्वयं नरेश जी के शब्दों में देखेंकृ“वात्स्यायन जी की ऐसी आत्मीयता मुझे मिली जो मेरी वेष-भूषा में ही नहीं, स्वत्व में भी इत्र बनकर सुवासित है।”

यहां हम उनके लेखन का मूल्यांकन नहीं कर रहे हैं। यहां तो बस इतना ही मेरे लिए पर्याप्त होगा कि रचनाकार ने प्रस्तुत ग्रंथ “शब्द-पुरुष अज्ञेय” में संस्कृति अन्वेषण किन-किन प्रसंगों में किया है। संस्कृति अन्वेषण के प्रति एक कुतूहलभरी उत्सुकता लेखक के मन में थी और जिसकी खोज की आकांक्षा।

“नन्दीग्राम से अयोध्या लौटते हुए मैं और वात्स्यायन जी अकेले ही थे। बड़ी देर तक राम कथा को लेकर चर्चा चलती रही कि क्या यह लोक कथा है या ऐतिहासिक या प्रतीक-कथा है। राम और कृष्ण से जुड़े हुए स्थल, धर्मभाव की चाहे जितनी दुहाई दे परन्तु ये हमारी सृजनात्मकता को अपील क्यों नहीं करते? इनकी कथायें जितनी मार्मिक हैं लेकिन इनसे जुड़े स्थल क्यों केवल शब्दों में “तीर्थ” बनकर निर्जीव हो गये हैं। संस्कृति को लेकर वात्स्यायन की भी चिन्ता तात्विक के साथ-साथ सृजनात्मकता के स्तर पर अधिक गहराती जा रही थी। तीर्थ जो कभी प्रकृति की ऊर्जास्वता के पर्याय रहे होंगे कालान्तर में ऐसे भ्रष्ट होते गये कि उनमें की आधारभूत प्रयोजन-दृष्टि ही समाप्त हो गयी दुहाई देने के लिए हम उन्हें जो भी और जैसा भी आदर व्यक्त करें परन्तु हममें ये प्रतिधर्म की

ओजविस्ता प्रति सृजनात्मकता की तेजस्विता क्यों नहीं जाग्रत करते? वहां मूल से अगर आप पहुंच गये हैं तो एक अजीब प्रकार की उदासी अनास्था आप में जगने लगती हैकृवृन्दावन, करीलकुंज, यमुनापूलिनकृकेवल आपको शब्द लगते हैं और वह भी ऐसे चुसे हुए गन्ने के खोखल हों। चित्रकूट में प्राकृतिक रम्यता न होती तो उसके तीर्थत्व की दुर्गति से केवल वितृष्णा ही होती।”

संस्कृति की खोज के अनेक माध्यम हो सकते हैं, हैं ही। परन्तु एक कवि लेखक के लिए जो सहज उन्मेष प्रकृति के वातायन में संभव है, वह अन्य स्रोतों में नहीं, लेखक का जो महिमामण्डित विराटत्व इस नाना रूपी प्रकृति के माध्यम से संभव है। नरेश जी ने भारतीय संस्कृति के “सांस्कृतिक बोध को पुनरुज्जीवित करने का प्रयास किया है जो व्यापक स्तर पर शताब्दियों से सोया हुआ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दूसरा सप्तक-अज्ञेय
2. नयी कविता की मानक कृतियां-डॉ. जीवन प्रकाश जोशी
3. नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर-डॉ. सन्तोष कुमार तिवारी
4. मेहता काव्य विमर्श और मूल्यांकन-श्री प्रभाकर शर्मा
5. कवि श्री नरेश मेहता तथा उनका काव्य-डॉ. विष्णु प्रभा शर्मा
6. नरेश मेहता का काव्य प्रवृत्ति विश्लेषण-श्री प्रभाकर शर्मा
7. शब्द पुरुष-अज्ञेयकृनरेश मेहता
8. आधुनिक से आगे-नरेश मेहता-डॉ. मीरा श्रीवास्तव

9. नरेश मेहता: कवित की ऊर्ध्वयात्रा—डॉ. राम

कमल राय

Copyright © 2017, Dr. Martand Singh. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.